जलविज्ञान एवं जल संसाधन
पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
15-16 दिसम्बर, 1995, रूड़की

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में जल एवं भूमि प्रबन्धन

सी0पी0 सिन्हा [1]

सारांश

जल संसाधन बहुल भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा है। इसका मुख्य कारण जल संसाधन के ईष्टतम दोहन एवं उचित प्रबन्धन का अभाव है। यह विडम्बना ही है कि देश में सर्वाधिक वर्षापात के बावजूद इस क्षेत्र में न तो हरित क्रान्ति हो पाई, न खेत क्रान्ति। और न और असीम अवसर उपलब्ध होने के बावजूद नील क्रान्ति ने इस क्षेत्र का मुँह नहीं देखा और पील क्रान्ति भी गायब हो रही है। जल संसाधन की अनियन्त्रित अधिकता ने भूमि कटाव की कठिन समस्या पैदा की है जिसने बाढ़ को उग्रतम बना दिया है। बाढ़ से कृषि की बर्बादी होती है तथा इस क्षेत्र की विलक्षता कृषि पद्धति बाढ़ को प्रभावित करती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ जल एवं भूमि का प्रबन्धन एक इकाई के रूप में किया जाना चाहिए।

प्रवेश

सात बहनों के नाम से प्रसिद्ध अरूणाचल प्रदेश, आसाम, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, मणिपुर तथा त्रिपुरा सात राज्यों के समूह को पूर्वोत्तर क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। यह 21° 57' से 29° 28' उत्तर आक्षांश तथा 89° 40' से 97° 25' पूर्व देशांतर के बीच फैला 2.55 वर्गकिमी0 का क्षेत्र देश के क्षेत्रफल का 8 प्रतिशत है। भू–आकृति के आधार पर इसे तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है – मेघालय प्लेटो, पूर्वोत्तर पर्वत एवं घाटी तथा ब्रह्मपुत्र घाटी जो क्षेत्रफल में क्रमशः 13 प्रतिशत, 65 प्रतिशत तथा 22 प्रतिशत हैं।

यह क्षेत्र देश की पूर्वोत्तर सीमा है तथा मुख्यतः विशाल पर्वतीय भूभाग है जो उत्तर में हिमाच्यादित हिमालय से शुरू होता है। समतल भूमि आसाम, त्रिपुरा तथा मणिपुर में ही पाई जाती है और बाकी चार राज्य पूरी तरह पहाड़ी हैं। यह क्षेत्र देश का अधिकतम वर्षापात क्षेत्र है। विश्व में सबसे अधिक वर्षा का स्थान जगत प्रसिद्ध चेरापुंजी इसी क्षेत्र में अवस्थित है। यह क्षेत्र प्रचुर जल सम्पदा से सम्पन्न है, किन्तु विडम्बना है कि इसके बावजूद यहाँ गरीबी है और आर्थिक विकास का अभाव है। इस क्षेत्र की 70 प्रतिशत कृषि भूमि आसाम में है और अन्न भण्डार बनने की इस राज्य को पूरी क्षमता है, किन्तु इसके विपरीत यहाँ अपने उपयोग के चावल और मछली का आयात दूसरे राज्यों से होता है।

जल सम्पदा की बहुलता से इस क्षेत्र में चारों ओर हरा जरूर दिखाई देता है, किन्तु दुर्भाग्यवश यहाँ हरित क्रान्ति नहीं दिखती। माल मवेशियों के चारे अनायास यहाँ पर्याप्त मात्रा में पैदा होते हैं, किन्तु खेत क्रान्ति अब तक कोसो दूर

---

1. निदेशक, पूर्वोत्तर क्षेत्रीय जल एवं भूमि प्रबन्धन संस्थान, तेजपुर (आसाम) -784 027

रही है। यहाँ मत्स्यपालन की अपार संभावनाएं मौजूद हैं, किन्तु नील क्रान्ति ने मुँह नहीं दिखाया और तो और, पन बिजली के उत्पादन के अनुकूल भू–आकृति और जल संसाधन की प्रचुरता उपलब्ध होने पर भी पील क्रान्ति का अभाव खेदजनक है। यह सब क्या बताता है? यही न, जल बिच मीन पियासी। ऐसा क्यों? उत्तर स्पष्ट है, जल संसाधन के उचित विकास एवं प्रबन्धन का अभाव। यह आश्चर्य की बात है, किन्तु है सत्य कि चेरापुंजी में, जहाँ विश्व में सबसे अधिक वर्षा होती है, गर्मी के दिनों में पीने के पानी की भयंकर कमी हो जाती है और कभी–कभी यह पाँच से दस रूपये प्रति बाल्टी बिकता है। इस समस्या का समाधान विकास और प्रबन्धन नहीं, तो और क्या है?

बाढ़ इस क्षेत्र की प्रमुख समस्या है जिसकी अपनी खूबी है। अत्यधिक वर्षा तथा मानव हस्तक्षेप के कारण पहाड़ों की ढ़ालों से मिट्टी का अतिशय कटाव होता है और नज्जनित गाद अन्ततः नदियों में पहुँचती है। अत्यधिक गाद प्रभार नदी के बहाव में अनेक विकृतियाँ पैदा करता है। परिणाम स्वरूप बाढ़ प्रभावित मैदान तो डूबता ही है, नदी के तट और तटबन्धों का कटाव होता है जिससे विध्वंस होता है और आक्रान्त जनता की तबाही चरम सीमा पर पहुँच जाती है। बाढ़ से कृषि की बर्बादी होती है, कृषि योग्य भूमि के डूबने से कृषि हेतु उसका उपयोग नहीं हो पाता, ढालों से कटाव के कारण उपजाऊ मिट्टी का ह्रास होता है और अन्तिम परिणाम आँखों के सामने है। समस्या का समाधान स्पष्टतः केवल जल प्रबन्धन नहीं है, वरन् जल एवं भूमि का एक साथ या मिला जुला प्रबन्धन ही कोई अनुकूल परिणाम दे सकता है।

वर्षा

पूर्वोत्तर क्षेत्र देश का सर्वाधिक वर्षाक्षेत्र है। फसल पैटर्न, कृषि पद्धति, कृषि उत्पादकता तथा बाढ़ सबसे बड़े एक घटक वर्षा पर आधारित हैं। यहाँ वर्षावधि लम्बी होती है तथा वर्षापात मार्च से अक्तूबर तक होता है। मार्च और अप्रैल में वर्षा छुट–पुट होती है तथा मई से अक्तूबर तक यह स्थिर एवं भारी रहती है। अरूणाचल प्रदेश के पूर्वोत्तर भाग, दिहांग के पश्चिमोत्तर तथाबोमडिला के पूर्वोत्तर में वार्षिक वर्षा 4000 मि०मी० से ज्यादा है, किन्तु दक्षिण–पश्चिम दिशा में यह कम हो जाती है। खाली–जयन्तिया–गारो पहाड़ियों में 10,000 मि०मी० से भी ऊपर वर्षा होती है, किन्तु ब्रह्मपुत्र घाटी के उत्तर में यह 2000 मिमी0 तक कम हो जाती है। मेघालय का केन्द्रीय भाग असाधारण भारी वर्षा के लिए प्रसिद्ध है – यहाँ औसत वार्षिक वर्षा 7000 मिमी0 से ऊपर ही रहती है, किन्तु उत्तरी तथा इससे लगा केन्द्रीय भाग वर्षा शून्यता क्षेत्र में पड़ता है और यहाँ वार्षिक वर्षा 4000 से 2000 मिमी0 तक ही रह जाती है। इम्फाल–लुमडिंग क्षेत्र में जो मिकिर पर्वतमाला के वर्षा शून्यता क्षेत्र में पड़ता है, सबसे कम वर्षा होता है। यह उल्लेखनीय है कि सारे पूर्वोत्तर क्षेत्र में 2000 मिमी0 से ज्यादा वार्षिक वर्षा होती है, कहीं–कहीं 11000 मिमी0 से भी अधिक। केवल कुछ छोटे क्षेत्र में 1000 से 2000 किमी0 के बीच वर्षा होती है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में वर्ष में 100 दिनों से ज्यादा ही वर्षा होती है।

नदी प्रणाली

इस क्षेत्र में दो प्रमुख नदी घाटियाँ हैं – ब्रह्मपुत्र घाटी तथा बराक घाटी। इन दोनों नदियों की अनेक सहायक नदियां हैं जो जल ग्रहण क्षेत्र से अपार जल एवं गाद लाती हैं और इसमें उड़ेलती हैं। बहुत हद तक मुख्य नदियों की विशिष्टता सहायक नदियों के व्यवहार पर निर्भर करती है। गुमती तथा इम्फाल इस क्षेत्र की अन्य नदियाँ हैं जो क्रमशः त्रिपुरा तथा मणिपुर में उद्गमित होकर बंगलादेश तथा म्याँमार को जाती हैं।

पुल्लिंग नाम धारी ब्रह्मपुत्र नदी तिब्बत में मानसरोवर के पास कौंगयूशा झील के दक्षिण में 5150 मीटर की ऊँचाई पर पैदा होती है और शांगपो नाम से तिब्बत से लगभग 1700 किमी0 की दूरी तय करके भारत में अरूणाचल प्रदेश में पहले सियांग और बाद में दिसांग नाम से प्रवेश करती है। दक्षिणमुखी कुछ दूर बहती हुई यह सदिया शहर के पश्चिम आसाम में प्रवेश करती है जहाँ देबोंग तथा लुहित दो सहायक नदियाँ इससे मिलती हैं। तब इसका नाम ब्रह्मपुत्र हो जाता है। यह आसाम घाटी में लगभग 720 मिमी0 की दूरी पूरब से पश्चित की ओर बहती हुई तय करती है। इस यात्रा

में उत्तर से जैधाल, सुबंसिरी कामेंग, धनसिरी, पुथीमारी, पगलाडिया, मानस, चम्पामाढी, सरलभंत्रा एवं संकोश तथा दक्षिण से नाबदिहिंग, बूढ़ी दिहिंग, दिसांग, डिरबू, झांजी, दनसिरी (दक्षिण) एवं कोपिली जैसी बड़ी सहायक नदियों से इसका मिलन होता है। गोलपारा के निकट यह गारों पहाड़ों में घूमती हुई बंगलादेश में प्रवेश करती है जहाँ यह गंगा सहित कई नदियों से मिलती हुई अन्ततः बंगाल की खाड़ी में विलीन हो जाती है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में ब्रह्मपुत्र का व्यवहार बहुत ही जटिल है। नदी तल में जहाँ तहाँ उगे अनेक छोटे–बड़े टापुओं के बीच घुमावदार मार्गो से बहती हुई यह नदी अपने दोनों तटों पर दबाव बनाए रहती है और तटों के कटाव से बाज नहीं आती। इस नदी की विशिष्ट लब्धि दुनिया की बड़ी नदियों में अधिकतम तो है ही, इसका गाद प्रभार भी अत्यधिक है। परिणाम स्वरूप स्थित के अनुसार कटाव और जमाव दोनों ही इसकी विशेषता है। विश्व का सबसे बड़ा नदी टापू माजुली इसी नदी में है। इसका क्षेत्रफल लगभग 120 वर्ग किमी0 है।

बराक माऊ के दक्षिण मणिपुर पहाड़ियों से निकलती है और दक्षिण–पश्चिम दिशा में एक तंग घाटी से बहती हुई तिपाईमुख आती है जहाँ एकदम घूमकर उत्तर की ओर जीरीघाट तक जाती है। इसके बाद यह पश्चिम की ओर बहती है तथा मंगा के पास सुरमा एवं कुशियारा दो शाखाओं में बंट जाती है। अन्ततः यह बंगलादेश में घुसकर मेघना में मिल जाती है।

गुमती त्रिपुरा की पहाड़ियों से निकलकर पश्चित दिशा में बहती हुई बंगलादेश में मेघना में मिल जाती है। इम्फाल उत्तरी मणिपुर से निकलकर इम्फाल शहर से गुजरती है और इटिल, थाडबल तथा खूगा को अपनी धारा में समेटती आगे बढ़ती है। लोक तक झील का पानी भी कोरडक नदी के द्वारा इम्फाल नदी में जाता है। उसके बाद इस नदी का नाम मणिपुर नदी हो जाती है। आगे चलकर सुग्नू तथा चकपी नदियों से इसका मिलान होता है और संयुक्त धारा दक्षिण की ओर बहती हुई म्याँमार में चिन्दविन नदी में जा मिलती है। इन सारी नदियों की विशिष्ठताएं अलग हैं, समस्याएं भिन्न हैं और समाज पर प्रभाव पृथक हैं। फिर भी सबों में एक सर्वनिष्ठ बात है कि सभी अपने–अपने प्रभाव क्षेत्र की अर्थ–व्यवस्था को काफी हद तक प्रभावित करती है।

बाढ़ की समस्या एवं प्रबन्धन

पूर्वोत्तर क्षेत्र अनेक नदियों, तंग घाटी, तेज ढाल, अत्यधिक वर्षा लम्बी अवधि की, बड़ी पहाड़ी आबादी, उच्च भूकम्प प्रवृति तथा ऐसे अनेक घटकों से भरा है जिनसे बाढ़, जल निस्सरण की तंगी तथा नदी तट के कटाव की समस्याएं पैदा होती हैं। बाढ़ प्रभाव क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश, मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में असुनियोजित विकास गतिविधियाँ, जल ग्रहण क्षेत्र का निम्नीकरण तथा वननाशन आदि दुर्भाग्य पूर्ण घटनाओं से समस्या बदतर हो जाती है।

आसाम में बाढ़ की समस्या मुख्यतः जल निस्सरण की तंगी, जल प्लावन तथा भूमि का कटाव है। इस राज्य में लगभग 38 लाख हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रवण है। ब्रह्मपुत्र कई गहरी तथा तंग संकुचित जलमार्गो से गुजरकर चौड़ी पाढों में बहती है जिससे इसके बहाव में अस्थिरता आती है जो अतिशय गाद प्रभाव, क्षरणशील तट, तेज ढाल तथा उच्च गति से बहाव से बदतर हो जाती है। नदी अपना मार्ग बदलने की प्रवृति रखती है और फलस्वरूप तटों का कटाव होता है। अतीत में एक दिन में 30 मीटर तथा एक मौसम में 1.5 किमी0 तट के कटाव होने के उदाहरण हैं। बाढ़ के हटते समय सबसे अधिक कटाव होता है।

मणिपुर में बाढ़ के मुख्य कारण हैं – भारी वननाशन, झूम कृषि, अवरोधी जलाशय का काम करने वाली नीचे तल की भूमि का उद्वार तथा नदी के जलमार्गो की अपर्याप्त क्षमता। कई क्षेत्रों में जलनिस्सरण की तंगी तथा इम्फाल और कोरडक के संगम के नीचे नदी तल में चट्टानी टीला होने से पश्च–जलोत्थान बाढ़ के अतिरिक्त कारण हैं। इस राज्य में लगभग 0.8 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रवण है।

त्रिपुरा 10 नदी घाटियों का एक पहाड़ी राज्य है। पहाडियाँ बहुत ऊँची नहीं है और घाटियां बहुत गहरी नहीं। हर बार भारी वर्षा होने पर अचानक बाढ़ आती है। ऊपरी खंड में बाढ़ की अवधि सीमित होती है, किन्तु निचले खंड में जल प्लावन अधिक समय तक कायम रहता है। कुछ क्षेत्रों में तट का कटाव तथा जल निस्सरण की तंगी का भी अनुभव होता है।

मेघालय, नागालैंड तथा मिजोरम में, जो पहाड़ी राज्य हैं, बाढ़ की समस्या मामूली है। मेघालय में कहीं–कहीं डूब और तट का कटाव होता है। नागालैंड की बड़ी समस्या नदियों के ऊपरी खंडों में झूम कृषि का प्रचलन है जिससे इस राज्य से निकलने वाली कई नदियों के गाद से भर जाने की संभावना है। अरूणाचल प्रदेश में तट के कटाव से कई गाँवों, शहरों तथा संचार व्यवस्था को खतरा है तथा वननाशन, झूम कृषि और विकास गतिविधियों से ढाल पर कटाव होता है जिससे गिरिपीठ मे नदी के जलमार्ग बन्द हो जाते हैं और बाढ़ की समस्या अग्रसर हो जाती है।

जहाँ तक बाढ़ प्रबन्धन का प्रश्न है, पूर्वोत्तर क्षेत्र में, खास कर आसाम, मणिपुर, मेघालय एवं त्रिपुरा में, मुख्यतः तट बन्धों का सहारा लिया गया है। पूरे देश के तटबन्धों के 27.5 प्रतिशत तटबन्ध ब्रह्मपुत्र तथा बराक घाटियों में ही बने हैं, किन्तु इनसे अपर्याप्त सुरक्षा ही मिली है। फिर समय क्रम में उनकी ऊँचाई बढ़ाने, उन्हें मजबूत बनाने तथा कटाव से बचाव के उपाय करने में एक बड़ी राशि खर्च करनी पड़ी है। पगलाडिया नदी पर 31 लाख रूपये की लागत से 87.6 किमी0 तटबन्ध बनाए गए, किन्तु बाद में उनकी ऊँचाई बढ़ाने, और मजबूत करने, कटाव बचाव कार्य करने तथा उनके रख–रखाव एवं मरम्मत पर 4.42 करोड़ रूपये खरचे गए। तटबन्धों के निर्माण से भारी वर्षा की स्थिति में उनके पीछे भयंकर जल निस्सरण की तंगी पैदा हुई है जिसने पहले से भी ज्यादा जनता की तबाही की है। नदियों के कुछ खंडों में नदी तल से मिट्टी निकालकर जल मार्ग सुधार की बात भी सोची गई है, किन्तु इसके बहुत खर्चीला होने तथा निकाली गई मिट्टी के निपटान की कठिन समस्या के कारण इसे व्यवहारिक नहीं पाया गया है। जल निस्सरण सुधार, कटाव, बचाव तथा नदी नियन्त्रण जैसे कार्य बहुत किए गए हैं, किन्तु बाढ़ की समस्या अभी भी बरकरार है और जनता की तंगहाली का कारण है।

देश के अन्य भागों की तरह पूर्वोत्तर क्षेत्र में भी मुख्यतः बाढ़ प्रबन्धन के संरचनात्मक तरीके अपनाए गए हैं, हालांकि इसका कोई औचित्य नहीं है। अतिवृष्टि, तेज ढाल तथा कटाव प्रवण मिट्टी के कारण नदियों में गाद का अतिशय आगमन होता है और नदी तल पर गाद जमाव आम बात है। इससे बाढ़ की प्रबलता बढ़ जाती है। इसके अलावा बाढ़ के प्रभाव क्षेत्र में अनधिकार–प्रवेश, उसका अनेक गतिविधियों के लिए दखलियाना, विकास कार्य आदि ने गत दशक के बाढ़ से होने वाली क्षति में वृद्धि की है। वर्तमान परिस्थिति में गैर संरचनात्मक तरीके अपनाए जाने चाहिएं, भविष्य में बाढ़ प्रबन्धन में इनकी अहम भूमिका होनी चाहिए। यह हर्ष की बात है कि इस क्षेत्र का एक राज्य मणिपुर देश का पहला एवं एकमात्र राज्य है जिसने बाढ़ क्षेत्र मण्डलन (फ्लड प्लेन जोनिंग) का कानून बनाया है, हालांकि सामाजिक एवं राजनैतिक कारणों से उस पर अमल नहीं हो पाया है। इस पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है जल ग्रहण क्षेत्र प्रबन्धन, भूमि उपचार, बाढ़ क्षेत्र प्रबन्धन, बाढ़ अमोद्मता, संकट तत्परता, प्रतिक्रिया नियोजन, बाढ़ पूर्वानुमान एवं चेतावनी, कर्मचारी एवं जनता का प्रशिक्षण आदि कुछ ऐसे उपाय हैं जिन्हें अपनाने से स्थायी लाभ हो सकता है।

सिंचाई प्रबन्धन

ऐतिहासिक कारणों से पूर्वोत्तर क्षेत्र में कृषि अविकसित हो रही है। अनेक फसलों की उत्पादकता केवल विकसित राज्यों की तुलना में ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय औसत से भी कम रही है। इस क्षेत्र में साधारणतः सभी फसलों की पैदावार मणिपुर में सर्वोत्तम है, जबकि मिजोरम एवं अरूणाचल प्रदेश में प्रति हेक्टेयर पैदावार प्रायः कम है।

इस क्षेत्र में कृषि उत्पादकता के निम्नस्थ होने के कई कारण हैं जिन्हें पांच समूहों में रखा जा सकता है – (i) जलवायु, (ii) साधन, (iii) जीव भौतिकी, (iv) प्रबन्धन, तथा (v) सामाजिक आर्थिक स्थिति। अतिवृष्टि तथा आर्द्रता, जाड़े में निम्न तापमान, निम्न प्रकाश प्रबलता एवं विकिरण, बाढ़ तथा सूखा आदि जलवायुजनित कुछ ऐसे घटक हैं जो कृषि

को बुरे ढंग से प्रभावित करते हैं। परिवहन एवं संचार सुविधा का अभाव, अपर्याप्त सिंचाई सुविधा, असन्तोषजनक फसल काटने एवं बेचने के साधन कृषि में बाधक हैं। मिट्टी की अम्लता, कृषि क्षेत्र की दुर्गमता, स्थलाकृति में उबड़खाबड़पन, भूमि कटाव एवं निम्नीकरण, परिस्थितिक असंतुलन, अवांछित पौधों की बहुतायत, कीट एवं नाशी जीव, पौधों की बीमारी तथा टेक्नोलौजी का निम्न स्तर आदि कुछ जीव भौतिक घटक कृषि पैदावार को कम करते हैं। प्रबन्धन से संबंधित तो बहुत समस्याएं हैं जिनमें कुछ मौलिक एवं मुख्य हैं सिंचाई की जानकारी का अभाव, प्रसार सेवा में अन्तराल, अल्प अभिप्रेरणा, अपर्याप्त प्रशिक्षण, उचित ऋण एवं विपणन सुविधा का अभाव, अनुसंधान एवं विकास में कमजोर संयोजन, सम्बद्ध विभिन्न विभागों में अप्रभावशाली समन्वय, आदि। सामाजिक आर्थिक समस्याएं इस क्षेत्र में कृषि को बहुत ज्यादा प्रभावित करती हैं। लोगों की अनभिज्ञता, ग्रामीण नेतृत्व में विभिन्नता, किसानों में जोखित उठाने की क्षमता का अभाव कृषि भूमि का अतिशय विखण्डन, सामाजिक परम्परा, विभिन्न मानवजातीय समूहों के भू–स्वामित्व के पैटर्न, कुछ मामलों में बेनामी जमीन्दारों की मौजूदगी, विकास कार्यो में किसानों की भागीदारी का अभाव, नारियों की (जो यहाँ कृषि में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं) शिक्षा की अपर्याप्त सुविधा और ऐसे अनेक कारण हैं जो इस क्षेत्र में कृषि में अवरोधक हैं। अस्तु, मैदानों में बाढ़ और पहाड़ों में झूम दो प्रमुख समस्याएं हैं जो कृषि पैदावार को बुरी तरह प्रभावित करती हैं और इन पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है।

झूम कृषि, जिसे विचलन कृषि कहा जा सकता है, पूर्वोत्तर क्षेत्र की पहाड़ों में बहुत ज्यादा प्रचलित हैं। यह कृषि पद्धति सबसे पुरानी पद्धति है जो लगभग 7000 वर्ष ईसा पूर्व शुरू हुई मानी जाती है। मानवजाति द्वारा खाद्य पदार्थ पैदा करने के प्रयास का यह पहला कदम था। यह आश्चर्य की ही बात है कि अबांछित होने के बावजूद यह आदिय पद्धति आज तक कायम है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में लगभग 4,92,000 आदिवासी परिदार झूम में लगे हैं तथा कुल 26,94,000 हेक्टेयर क्षेत्र इससे प्रभावित हैं, हालांकि किसी एक समय 4,35,000 हेक्टेयर भूमि झूम में होती है।

झूम पद्धति की, जिसे काटों और जलाओं पद्धति भी कहते हैं, मुख्य विशेषता है–पेड पौधे काटकर अप्रयुक्त क्षेत्र को साफ करना, उन्हें जलाना, भूमि संरक्षता के उपाय किए बगैर ढाल पर विभिन्न फसलों के मिश्रित बीज लगाना और अन्त में कुछ वर्षो बाद एक स्थान से दूसरे स्थान पर यही सब कुछ करना। इस तरह फसल परिवर्तन के बजाय भूमि परिवर्तन इस पद्धति में होता है। पेड पौधे काटने और जलाने के अलावे सारे काम स्त्रियॉ करती हैं। इसमें पूँजी लगभग नहीं के बराबर लगती है।

भूमि पद्धति जब विकसित हुई तब भले ही ठीक रही हो, किन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में यह बिल्कुल अवांछित है। इसके कारण, वननाशन, भूमि का कटाव, जलाशय में गाद जमाव, भूमि के उपजाऊपन का ह्रास, पारिस्थितिक असंतुलन, जलस्रोत का विलोपन आदि अनेक विकृतियां पैदा होती है। यह प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल पड़ता है।इसी कारण अभी तक कायम है। सामाजिक परम्परा से जुडा होने के कारण इसका उन्मूलन कठिन है, फिर भी इस पर काबू पाना असंभव नहीं है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में सिंचाई का विकास अभी भी शैशवावस्था में ही हैं। फसली क्षेत्र के 22.1 प्रतिशत भूमि को ही अभी तक आधुनिक सिंचाई की सुविधा मुहैया कराई जा सकी है। कुछ बडी सिंचाई की योजनाओं पर काम शुरू जरूर हुआ है, किन्तु अभी तक वे चालू नहीं हुई है। वर्तमान में मध्यम एवं लघु सिंचाई योजनाएं ही सिंचाई के प्राथमिक स्रोत है। कुछ आदिम एवं देशी सिंचाई के तरीके अभी भी प्रचलित हैं। सिचित सीढीदार खेती नागालैंड में आम बात है, कुछ हद तक मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा में भी इसका प्रचलन है। इन सीढीदार खेतों में पहाडों के जलप्रवाह को उसके उद्‌गम के पास ही ले लिया जाता है और ऊपर से नीचे की और एक खेत से दूसरे खेत में पानी बहाया जाता हैं कि हर खेत में आवश्यक गहराई तक पानी रूका रहे और पानी बहने से भूमि का कटाव कदापि न हो । नागालैंड में विकसित तथा प्रचलित जाबों कृषि पद्धति कृषि एवं वन के पारम्परिक उपयोग पर आधारित है। इसमें भूमि एवं जल संरक्षण की पूरी व्यवस्था है। तथा ऊपरी ढाल से आए पानी को जमाकर सिंचाई तथा पीने के लिए उसका उपयोग करने का प्रावधान है। उससे भूमि कटाव पर नियन्त्रण करने तथा उपजाऊपन को कायम रखने में सहायता मिलती है। यह प्रणाली (चित्र

सं0 1) संसाधन प्रबन्धन तथा पारिस्थितिक संतुलन के लिए अत्यन्त अनुकूल है। मेघालय में बांस सिंचाई प्रणाली का विकास हुआ है। इसमें ऊँचाई पर स्थित प्राकृतिक जल प्रवाहों को बॉस की वाहिका में ले लिया जाता है। ये वाहिकाएँ बॉस या लकडी की टेक पर रखी जाती हैं और शनैः शनैः नीचे आकर फसल की जड में बूँद बूँद पानी की आपूर्ति करती हैं (चित्र 2) । इस प्रणाली से ढालू जमीन पर कम पानी से दूर दूर उगने वाली फसले की सिंचाई की जा सकती है। अरूणाचल प्रदेश के अपातानी पलेटो पर जल एवं सिंचन प्रबन्धन की एक असाधारण व्यवस्था का विकास हुआ है। इसके अन्दर आसपास की पहाडियों से निकलने वाले हर जल प्रवाह को जलवाहिकाओं के जाल द्वारा सीढीदार खेतों में भेज दिया जाता है और एक के बाद दूसरे खेत में बहाया जाता है। ऐसा करते समय हर खेत में पानी की आवश्यक गहराई कायम रखी जाती है। इसके लिए खेत की मेड में भूमितल से निश्चित ऊँचाई पर पाइप निकास लगाया जाता है। इन खेतों में धान के साथ मत्स्यपालन भी किया जाता है। नागालैड में भी यह विधि अंगामी तथा चाखेसांग जनजातियों में प्रचलित है और पानी खेती के नाम से जानी जाती है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में सिंचाई की मुख्य समस्या बाढ़ है जो आसाम घाटी में प्रतिवर्ष ३ से 5 बार आती है। खरीफ में बीच बीच में सूखे के दौर के साथ अतिकाय वर्षा जल और रब्बी में जल की कमी विडम्बनात्मक स्थितियां ह। अतिवृष्टि अपने आप में इस क्षेत्र के लिए वरदान नही है। इससे सतही मिट्टी का कटाव तेज होता है, कृषि भूमि के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी घुल जाती है और पौष्टिक तत्व घुलकर जमीन के नीचे चले जाते है। इस क्षेत्र में कुछ स्थान ऐसे हैं जहां 4000 मि.मी. से ज्यादा वर्षा होती है, किन्तु ये मुख्यतः मेघालय के केन्द्रीय पहाडी भाग हैं तथा सिंचाई की दृष्टि से खास श्रेणी में नही आते। इसके विपरीत नगांव का वर्षा शून्यता का छोटा क्षेत्र है जहां 1500 से 2000 मि. मी. वर्षा होती है, किन्तु यहां की कृषि पद्वति पर्वोत्तर क्षेत्र के 2000 मि. मी.से ज्यादावर्षा के भूभाग से भिन्न नहीं है। इस तरह पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए सिंचाई की एक सुसंगत व्यवस्था अति वांछनीय है। इसमें बाढ ओर कृषि के मद्देनजर जल एंव भूमि के उचित प्रबन्ध का प्रावधान होना होगा और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समायोजित एंव सुनिश्चित प्रयास करने होगें।

उपसंहार

पूर्वोत्तर क्षेत्र में इसकी अनन्य आकृति के कारण जल एंव भूमि संसाधन की खास एंव विशिष्ट समस्याऐ हैं। यंहा बहुतायत के बीच कमी है। बाढ, कृषि एंव सिंचन से जुडे प्रश्न जटिल है। उनका एक साथ सुसंगठित ढंग से समाधान निकालना होगा। छुटपुट प्रयास बेमानी है।

प्रसंग

भारत सरकार (1980), राष्ट्रीय बाढ आयोग रिर्पोट, खंड। उर्जा एंव सिंचाई मत्रांलय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

आई. सी. ऐ. आर. (1981), वाटर मैनेजमैंट इन नार्थ ईस्टर्न रीजन, पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का अनुसंधान कम्प्लेक्स, बारापानी, मेघालय।

बोरठाकुर, डी. एन. (1992), एग्रीकल्चर आफ नार्थ ईस्टर्न रीजन बिथ स्पेशल रेफरेंस टू हिल एग्रीकल्चर, बीसी प्रकाशन, गुवाहाटी।

इनसिड (1993), नन–स्ट्रक्चरल आफ पेक्ट्स आफ फलड मैनेजमेंट इन इंडिया, सिंचाई एंव जल निस्सरण पर भारतीय राष्ट्रीय समिति, नई दिल्ली।

प्रसाद, आर. एन. एंव शर्मा, यू. सी. (1994), पोटेंसियल इनडेजिनस फार्मिंग सिस्टम्स आफ नार्थ ईस्टर्न हिल रीजन, पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र के लिए भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद का अनुसन्धान बूम्टलेबस, बारापानी, मेघालय।

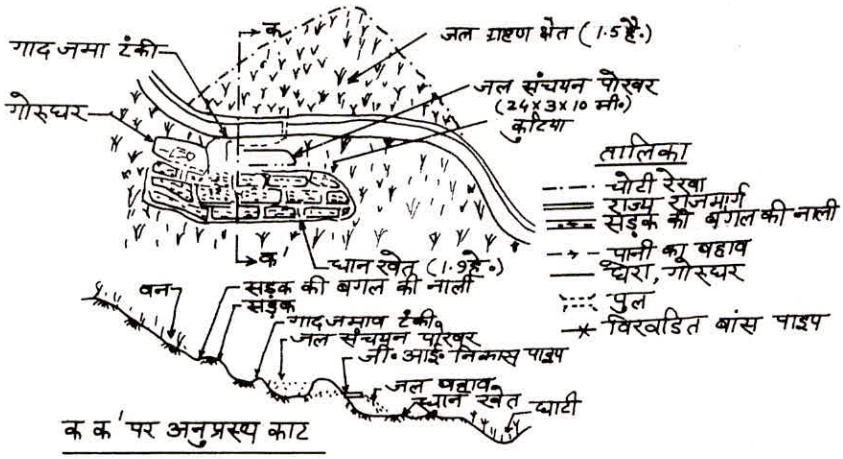

चित्र 1: ज़ाबो कृषि पद्धति में जल एवं भूमि प्रबन्धन

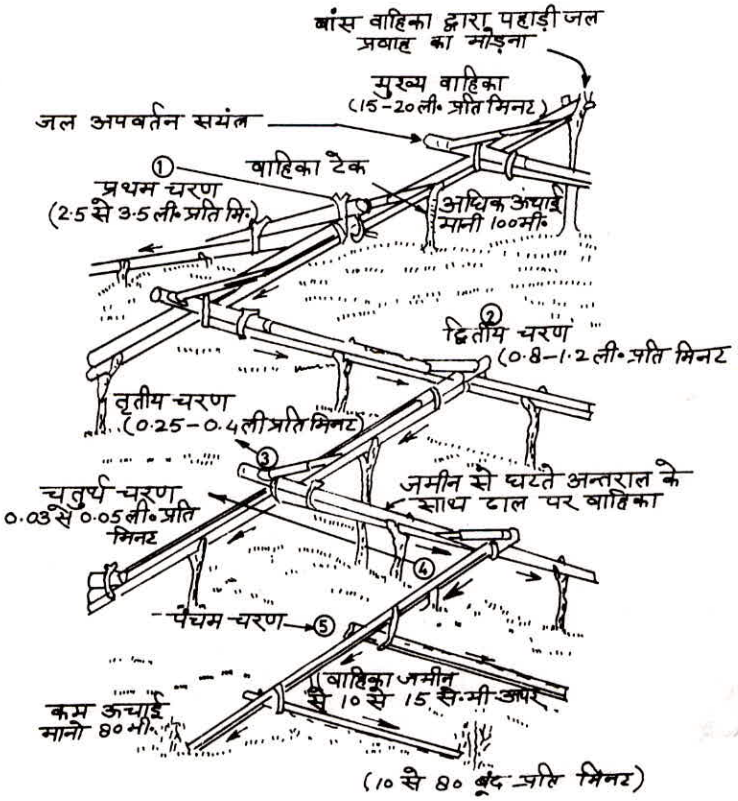

चित्र 2 : बांस टपक सिंचाई प्रणाली में जल वितरण